-धाराकल्प of some anonymous author - Edited with commentary in Hindi by वैद्य जगन्नाथ प्रसाद शुक्ल. (सुधानिधि-ग्रंथावली -1) Prayag (Allahabad), 1981 Vikram era.

(5)

(1339)

Bill No. 3/07-08

129

2008-0292

ধা[illegible]কল্প

1339



सुधानिधि ग्रन्थावली नं० १

धारा-कल्प



प्रकाशक—

वैद्य जगन्नाथ प्रसाद शुक्ल


Indira Gandhi National
Centre for the Arts

॥ भूमिका ॥

इस धाराकल्प पुस्तिकाके मूल कर्ताका नाम विदित नहीं हो सका। इसकी मूल प्रति केरल लिपिमें लिखी हुई प्राचीन पुस्तकोंके साथ त्रावनकोर राज्यके विन्यासपुरी नामक ग्रामके निवासी श्रीयुक्त ब्रह्मश्री ते० नीलकण्ठ शर्मा महोदयको मिली थी। आपने इसे देवनागराक्षरमें लिखकर बम्बईसे प्रकाशित होनेवाली 'आयूर्वेदीय ग्रन्थ-मालामें" प्रकाशति कराया। उसीको आयुर्वेद महामण्डलके सहकारी मन्त्री श्रीयुक्त पण्डित श्रीनिवासाचार्य शास्त्री महोदयकी सहायतासे हिन्दी टीका कर हम प्रकाशित करते हैं। इसमें धाराकल्पकी विधि बहुत ही सरलताके साथ स्पष्ट रूप से लिखी गयी है। यद्यपि चरक, सुश्रुत और वाग्भट के स्वेदाध्याय में इसका वर्णन है, तथापि इसका वर्णन उनसे भी उत्तम और स्पष्ट है। अतएव यह छोटा होने पर भी वैद्योंके लिये बहुत उपयोगी होगा। जिन पण्डित नीलकण्ठ शर्मा और पण्डित यादव जी त्रीकमजी आचार्य महोदयके कारण यह पुस्तक हिन्दी पाठकों के सामने रखी जा सकी उन दोनो सज्जनोंको हम हार्दिक धन्यवाद देते हैं।

अषाढ़ स० १९७१ वै०। जगन्नाथ प्रसाद शुक्ल।

द्वितीयावृत्ति

आनन्दकी बात है कि इस पुस्तककी द्वितीयावृत्ति पाठकोंकी सेवामें उपस्थित की जा रही है। वैद्योंमें यदि विविध आयुर्वैदिक विषयोंके अनुशीलन और पठनकी प्रवृत्ति जोरदार हो तो इस तरहकी अनेक पुस्तकें प्रकाशित होती रहें।

ज्ये० शु०-१०-सं० ८१ जगन्नाथ प्रसाद शुक्ल।

धारा-कल्प

मङ्गलाचरण।

अनन्तकल्याण गुणैकभाजनं निरन्तरानन्दचिदेक विग्रहम्।
अनन्तरायेप्सित सिद्धयेवयं तमेकदन्तं सततं भजामहे ॥ १ ॥

हमारे परमहितकारी आयुर्वेदशास्त्रमें हर एक वस्तुके गुणदोष भलीभांति निश्चित किये गये हैं। इनमें से "घृताष्टगुणं तैलं मर्दनान्नतु भक्षणात्।" अर्थात् घीसे आठगुणा पौष्टिक तेल है; परन्तु वह गुण मर्दनसे होता है भक्षणसे नहीं। अर्थात् घी भक्षण करनेसे पौष्टिक है, तेल मालिश करने से। इसी तेल की धारा-विधि धाराकल्पसे जानकर प्रयोग करनेसे वह विविध उपद्रवोंको शान्त करती है। इस लिये आयुर्वेदोक्त धाराकल्प सर्वसाधारणके हितार्थ हिन्दीमें अनुवाद कर प्रकाशित किया जाता है। इस धाराकल्पका मूल "आयुर्वेदीय ग्रन्थमाला में" प्रकाशित हो चुका है। उसी को यहाँ हिन्दी अनुवाद सहित देते हैं।



स्नेहधाराके गुण ।

धातूनां दृढ़तां करोति वृषतां देहाग्निवर्णौजसां,
स्थैर्यं पाटवमिन्द्रियस्य जरसो मान्द्यं चिरञ्जीवितम् ।
अस्थ्नां भङ्गमपाकरोति नितरां दोषान् समीरादिकान्,
सर्व स्नेहकृता सुखोष्णसुभगा सर्वाङ्गधारानृणाम् ॥२॥

मनुष्योंके लिये तैलादि स्नेहकी सर्वाङ्गधारा धातुओंको दृढ़ करती, शरीर, अग्नि, वर्ण और ओजकी पुष्टि, इन्द्रियों-की स्थिरता, इन्द्रियोंकी कार्यकुशलता, बुढ़ापेकी रुकावट, मन्दाग्निका नाश और आयुष्यकी वृद्धि करती तथा हड्डियोंके जोड़ोंको मजबूत रखती है। इससे टूटा हुई हड्डी जुड़जाती हैं और सभी प्रकारके वातादि प्रबल दोष धारासे शान्त होते हैं। हर एक प्रकारके तेलकी धारा सुखोष्ण (न बहुत गरम न ठंडा) है; और सुखको भी यह धारा बढ़ाती है ॥२॥

सेवन विधिमें द्रोणी (हौज) बनानेके वृक्ष ।

प्लक्षोदुम्बर गन्धसार वरुण न्यग्रोध देवद्रुमाः,
पुन्नागाह्व कपित्थ चोच वकुलाशोकासनाम्रास्तथा ।
डोला चम्पक बिल्व निम्ब खदिरामोघाग्निमन्थार्जुना,
इत्याद्यन्यतमेन सेचनविधौ द्रोणीं प्रकुर्याद्बुधः ॥ ३ ॥

पाकर, गूलर, चन्दन (सफेद), वरना, वट (बरगद) पीपल, देवदारु, नागकेसर, कैथा, कटहर, तजवृक्ष, बकुल, (मौलसरी), अशोक, असन, आम, डोला (?), चम्पा, बेल, नीम, खैर, पाडर, अरनी, अर्जुन इन वृक्षोंमें से किसी एक वृक्षकी लकड़ीका सेचनपात्र (हौज) बनावे। इस पात्रका नाम द्रोणीपात्र है।

द्रोणी कितनी बड़ी और कैसी हो।

द्रोणी हस्तचतुष्कदीर्घ कर मात्र व्यास तत्पादमा-
त्रोच्चभित्तियुता दृढा समतला पादान्त रन्ध्रा बहिः ।
शीर्षस्थान इहोन्नतैक करमत्रातान विस्तारका
निम्ना किञ्चन मध्यतश्च चरणै र्हस्तैश्च युक्तादृढः ॥४॥

द्रोणी पात्र, चार हाथ लम्बा, एक हाथ चौड़ा हो, उसमें हाथ हाथ भर ऊंची दीवालें हों, वह मजबूत हो, नीचेका भाग समान हो, पांवोंकी ओर अन्त में छिद्र हों, (जिनमें से स्नानका जलादि निकल जाय) मस्तककी ओर एक हाथ ऊंचा, लम्बा, चौड़ा पटिया लगा हों, बीचमें गहरा हो, मज़बूत पाये बैठाये गये हों, हाथ पांव धरनेके स्थान सुन्दर बने हों इस तरह नावके ढङ्ग का पात्र, बनाया जाय। ऐसे पात्रको द्रोणी कहते हैं ॥ ४ ॥

सेचन विधि

एवं मारुतहारिभिश्च तरुभिर्द्रोणीं विधायादराद्-
देवं चेभमुखं * द्विजानपि भिषग्वृद्धान् प्रपूज्यातिथीन् ।
पूर्वाह्णे दिवसे शुभेऽतिमहिते लग्ने शयानस्य तद्-
द्रोण्यांसेचन माचरेत् पटुमति र्द्रव्यै र्यथोक्तै भिषक् ॥५॥

वायुविनाशक वृक्षोंकी द्रोणी बनाकर फिर शुभमुहूर्त युक्त दिनमें इष्टदेव, गणपति, ब्राह्मण, वृद्ध, वैद्य और अतिथियोंका पूजन कर प्रातःकालके समय उस द्रोणी—पात्रमें रोगी सो जावे। ऐसे सोये हुए मनुष्यके ऊपर अतिकुशल वैद्य शास्त्रोक्त औषधियोंके तैलादि स्नेहसे सेचन करे ॥५॥

* गजानन।

सेचन करनेका कलश ।

स्वर्णाद्युत्तमलोहजस्तु करको मृत्सम्भवो वाऽत्र त-
न्नालाग्रं तु कनिष्ठिकांगुलि परीणाहोन्मितं रोगिणः ।
द्विप्रस्थ प्रमितो विधेय इति वा मध्यस्थ रन्ध्रादधो—
गच्छद्वर्ति रथोर्ध्वलम्ब्यपि घटः कार्यः शिरः सेचने ॥६॥

सोना चांदी आदिसे लगाकर लोहपर्य्यन्त किसी धातुका कमण्डलु (करकः=करवा) बनाया जाय, उसमें टोटी रोगीकी कनिष्ठिका (छोटी) अंगुलीके समान मोटी लगायी जानी चाहिये। यदि किसी कारणसे कोई धातुका करवा अप्राप्य होतो मिट्टीकाही करवा सही। ऐसे कलशकी टोटी इस प्रकारकी हो कि जिसके छिद्रमें से बराबर बत्ती निकल सके और वह सेचन—कलश इतना बड़ा हो कि उसमें दोसेर जल आजाय ॥६॥

सेचन विधिमें योग्य सेवक तथा सेचन विधि ।
और दोषानुसार तेल, घृत आदि ॥

ग्राह्यास्ते परिचारकाः स्यु रनुरक्ताः सावधानाः शुभा
ये तद्धस्त दृढ़ावलम्बनवशात्तत्पात्र पातादितः ।
भीतिर्जातुचिदातुरस्य तु यथा न स्यात्तथा कारयेद्
धारां मूर्धनिहस्तयोरपि पृथग्वक्षःस्थले पादयोः ॥७॥

यद्वा हस्ततलप्रपूर्णपिचुना सेकं क्वचित् कारयेत्
योज्यं स्नेहचतुष्टयं च तिलजं वा तत्र शुद्धेऽनिले ।
पित्तेऽस्रेच घृतं, कफेतु तिलजं वातेऽस्रपित्तान्विते
तैलाज्यन्तु समं, कफेन सहिते तैलार्धभागंघृतम् ॥८॥

सेचन विधिमें सेवक ऐसे होने चाहिये कि जो अनुरक्त (मालिक पर प्रेम रखनेवाले), सावधान (सचेत), भले

(निरोग) हों। जिनके हाथसे कलश छूट पड़नेका या धाराके बाहर दवाई ढरकजानेका डर न हो; ऐसे सेवकोंके हाथमें कलश देकर अलग अलग हाथोंमें, वक्षस्थलमें और पांवोंमें धारासे अभिषेक करावे। अथवा कहीं कहीं हाथोंकी गदोरी· में रुई लेकर उस रुईसे थपथपाते हुए सेचन करें।

केवल वायुरोगपर स्नेह चतुष्टय* (यथावश्यक चारों प्रकारके स्नेह) लेने चाहिये; अथवा केवल तिलका तेल ही लेना चाहिये। पित्त और रक्तदोषमें घृत, कफमें तिलका तेल, वातरक्त और रक्त पित्त अथवा वातवा पित्त युक्त रक्तदोष हो तो तेल और घृत दोनों समान, कफ सहित वात हो तो आधा हिस्सा तेल मिलाया हुआ घृत सेचनमें उपयुक्त है।

सेचनमें तक्रधाराविधानके लिये पहले
चार प्रकारकी तेलकी धारा दिखाते हैं।

अभ्यङ्गः परिषेचनं पिचुशिरोबस्ती च विधाचतु—
र्भेदं मूर्धनि तैलमप्यतिगुणं चैतत् क्रमेणोत्तरम्।
अभ्यङ्गो विनिहन्ति रौक्ष्य मपि कण्डूदाहशोफव्रण—
क्लेदादीन् परिषेचनं, पिचु कचस्फोटादि, चान्त्योऽनिलम्

मस्तक पर अभिषेक चार प्रकारका होता है। १ अभ्यङ्ग, २ परिषेचन, ३ पिचु (फाहा) ४ शिरोबस्ति। इनमें पृथक् पृथक् रोगानुसार निम्न लिखित लाभ होता है। †

---

* सर्पिर्मज्जावसा तैलं स्नेहेषु प्रवरं मतम्।

अर्थात् घी, मज्जा (हड्डियोंके भीतरका पतला पदार्थ) चर्बी और तेल ये स्नेह चतुष्ट अर्थात् चार प्रकारके स्नेह हैं

† मालिश कर कर तेल लगाना २ ऊपर बँधी धार डालना। ३ रुई का फाहा मस्तक पर रखना। ४ शिरोबस्ति

अभ्यङ्गसे शरीर और मस्तकका रूखापन और खुजली आराम होती है, परिषेचनसे दाह (जलन), सूजन, व्रण और ग्लानि आराम होती हैं। पिचु अर्थात् फाहेसे, बालोंके रोग तथा फोड़े फुंसी आदि आराम होते और शिरोबस्तिसे वायुरोग आराम होता है ॥९॥

तक्रधारा-विधि ।

धारायास्त्वेकवर्षातपहिमपरिशोषातिशुद्धप्रकीर्णं
धात्री प्रस्थं सपादं भिषगथ पटुधीः सन्त्यजे द्बीजमस्याः ।
उत्क्वाथ्याष्टादशाख्यामितकुडुवजले षष्ठभागावशिष्टं,
तत्तुल्यं चाम्लतक्रं विधिरिति मुनिभिः प्रोक्त आत्रेय मुख्यैः १०

आत्रेयादि महर्षियोंने कहा है कि एक वर्ष पुराने अर्थात् चौमासा, गरमी, तथा ठण्ड भर सूखे रखे हुए आँवले सवासेर बिना बीजके कूटकर अठारह पाव जलमें उनका काढ़ा बनावे। छठा हिस्सा (तीनपाव) पानी बाकी रहनेपर उस काढ़ेको छानले, फिर उतनाही (तीनपाव) अम्लतक्र (खट्टा मट्ठा) लेना चाहिये। (दूधसे दूना पानी मिलाकर पकावे फिर उस दूधका दही जमाकर जो मथा हुआ भाग होता है वह मट्ठा तक्र कहाता है)।

धाराके योग्यपात्र ।

धारायां स्फटिक प्रवर्ण रजत प्लक्षादि पूर्वोक्त, वृ-
क्षायस्ताम्र वराटिका प्रथित मृत्पात्रं त्वतीवोत्तमम् ।
केचिद्रोगिकनिष्ठिकान्तविवरं शंसन्तिकेचित्तु वा
तत्पर्वोपमविस्तृतं तु सुषिरं पात्रस्य मध्ये कृतम् ॥११॥

स्फटिकमणि, मूंगा, चांदी, पूर्वमें कहे हुए वटादि वृक्षोंके काष्ठ, लोह, तांबा, मिट्टीका पात्र अथवा चीनी मिट्टीका पात्र

अति श्रेष्ठ होता है । पात्र टोटीदार होना चाहिये । कदाचित् टोटीदार नहीं मिल सके तो पात्रकी पेंदीके बीचमें रोगीकी कनिष्ठिका अंगुलीके बराबर छिद्र करना चाहिये; अथवा अँगुलियोंके पोरके समान मोटा छिद्र हो ॥१२॥

सेचन होनेके पश्चात् कर्तव्य ।

धारायाश्चावसाने निजगदशमन प्रोक्त सर्पिश्च सेव्यं,
तत्काले चावसंस्थः कथमपि वसतु प्रीतिमानेष रोगी ।
कायक्लेशानशेषान् मनसि सुखहरान् वक्त्रजिह्वा सुखादीं-
स्त्यक्त्वा पाटीर शुद्धाम्बर विधृत वपुर्ब्रह्मविज्ञानि तुल्यः ॥१२॥

पूर्वोक्त विधिसे सेचन समाप्त हो जानेपर वैद्य शास्त्रोक्त विधिसे बना हुआ उस रोगको निवृत करने योग्य घृत सेवन करावे । रोगी अपना चित्त प्रसन्न रखे, सुखमें विघ्न-कारी शारीरिक-मानसिक दुःखों को भुला देवे, जीभ और मुखके सुखको (स्वादिष्ट मनमानी चीजोंका खाना) त्याग कर दें, शुद्ध वस्त्र धारण करें, चन्दनादि लगावे, और ब्रह्म ज्ञानी जैसा रहे ।

तक्रधाराके सेचनसे गुण

केशादीनां च शौक्ल्यं कलममपितनुतां दोषकोपं शिरोरुक
बाधामोजः क्षयं तत्करचरणपरिस्तोदनं मूत्रदोषम् ।
सन्धीनां विश्लथत्वं हृदयरुगरुचो जाठराग्नेश्चमान्द्यं
धात्री तक्रोत्थ धारा हरति शिरसि वा कर्णनेत्रामयौघम् ॥१३॥

धात्रीतक्रकी (आंवला मिले मट्ठेकी) धारा शिर में लेनेसे बालों की सफेदी, सुस्ती, दुबलापन, वातादि दोषोंकी वृद्धि, मस्तक सम्बन्धी रोग, ओजका क्षय, हाथ पैरों का

फटना, मूत्र दोष, सन्धियोंका ढीलापन, हृद्रोग, अरुचि रोग, मन्दाग्नि, शिरोरोग कर्णरोग, नेत्र रोग, इत्यादि दूर होते हैं॥ ४

घृततैलधारा सेचनके गुण ।

स्थैर्यं वाङ् मनसोः शरीरबलमप्याहारकांक्षा धृति—
र्माधुर्यं वचसस्त्वचोऽपि मृदुता नेत्रे प्रकाशोऽगदः ।
शुक्रासृक् परिपोषणं रतरति दीर्घायुरल्पोष्णता,
सुस्वप्नं घृततैल सेचन गुणेनाऽस्तीहजाग्रत् सुखम् ॥ १४ ॥

घी और तेलकी धाराके सेचनसे मन और वाणीकी स्थिरता, शारीरिकबलकी वृद्धि, भूख अच्छी लगना, धीरता, वाणीकी मधुरता चमड़ेका कोमलपन, वीर्य और रक्तकी वृद्धि अर्थात् दीर्घायु, ऊष्णताकी, कमी, नींद अच्छी आना, इत्यादि लाभ होते हैं। इस प्रकार यह सेचन प्रत्यक्ष फल· दायी है ॥ १७ ॥

स्नेहस्वेद

तत्त द्व्याधिशमोदितौषधिगणैः सिद्धं च वा योजयेत् ।
स्वस्थेऽभ्यञ्जनसेचनादिषु सदा तैलाज्य सम्मिश्रितम् ।
एकाहान्तरमेव वा प्रतिदिनं पूर्णे बले मध्यमे ।
त्यक्त्वाद्वित्रिदिनं चतुर्दिनमपोह्याल्पेऽत्र षटपञ्च वा ॥१५॥
पित्तेकोष्णमथोष्म मेव विहितं शुद्धे समीरामये ।
तस्नेहं द्रवमात्र मेव कफयुके रक्तपित्तेऽपि च ।
ऊर्ध्वाङ्गे तु सुशीतमेव विहितं सिञ्चे दविच्छन्नमे,
वायर्थोच्चविलम्बित द्रुतनतं कुत्राऽपि नैवाचरेत् ॥१६॥

स्नेहस्वेद (तेल या घी की मालिश आदिसे पसीना निकालना) कई रोगों को मिटाता है ।

जिन जिन रोगों को मिटाने की आवश्यकता हो, उन उन रोगोंके नाशकगणकी सभी औषधियां डालकर सिद्ध किया हुआ तैल या घी ले; अथवा उन रोगोंमें कहा हुआ कोई सिद्ध किया हुआ तेल या घी लेना चाहिये। रोगीका रोग, बल, शरीर बल आदिके अनुसार प्रति दिन अथवा एक दिन बीच में देकर या २-३-४-५-६ दिन बीचमें छोड़ छोड़ कर स्नेहस्वेदन करे ॥१५॥

पित्त विकारमें तेल थोड़ा गरम (कुनकुना), केवल वात-रोगमें गरम, कफवात तथा रक्तपित्तमें द्रवमात्र (केवल इतनाही गरम किया जाय कि घृत पिघल जाय), ऊर्ध्वाङ्ग, मस्तक, नेत्र, कान इत्यादिमें गरम करके ठण्डा किया हुआ तेल काममें लाना चाहिये।

कई वर्षोंका पुराना (बनाकर रख छोड़ा हुआ) अथवा जल्दीमें पूरा सिद्ध न हो पाया हो, ऐसे घृत-तैलको उपयोगमें नहीं लेना चाहिये ॥१६॥

सेचनका काल।

रूक्षे पित्तयुतेऽनिले च परमः कालो मुहूर्त द्वयं,
सार्धं तत्र, तदर्धमात्र उदितः स्निग्धे कफोन्मिश्रिते।
यावत् स्वेद समुद्भवो भवति तत्तावन्निवर्तेत वा,
स्नेहोऽत्र त्रिभिरेति रोमविवरं मात्राशतैश्च क्रमात् ॥१७॥
सत्तापि त्वच एति सप्तभिरथो षड्भिस्तथाऽस्रादिकान्।
षड् धातूनिषु सिन्धुदिग्ग्रहमिता मात्रा मूहूर्तो भवेत् ॥ १८ ॥

रूखे पित्त सम्बन्धी रोगोंमें केवल दो मूहूर्त (कच्ची साठ पलकी १ घड़ी और दो घड़ीका एक मुहूर्त अर्थात् ४८ मिनट) और पित्तसहित वायुमें तीन मुहूर्त अर्थात् एक घण्टा

और बारह मिनट, तथा चिकने कफ मिश्रित वायुमें इससे अधा अर्थात् ३६ मिनट मात्र धाराकाल है। अथवा शरीरमें अच्छी तरह पसीना आजाने पर धारा बन्द करदे।

इस धारा-कल्प—विधिमें ३०० मात्रामें तेल रोमरन्ध्रों के छिद्रोंमें प्रविष्ट होता है और ७०० मात्रामें सातों त्वचाओंमें। ६०० मात्रामें रक्तादि छहों धातुओंमें प्रविष्ट होता है। ९१०७ मात्रा का एक मुहूर्त होता है।

धारासेचनमें धाराकी ऊंचाई

धारोच्चं चतुरंगुलं तु शिरसः सेके तदन्यत्रतत्।
प्रोक्तं तत्त्रिगुणं च मन्दपतनात्तद्रोगवृद्धिर्भवेत्॥ १८॥

शिरः सेचनमें मस्तकसे केवल ४ अङ्गुल ऊंचेसे धारा छोड़नी चाहिये। अन्यस्थानोंके लिये इससे तिगुनी अर्थात् १२ अङ्गुल ऊंचेसे धारा छोडनो चाहिये। इससे कम अधिक होनेसे या धारा बराबर न गिर कर मोटी पतली गिरने से उन्हीं रोगों को (जिनके मिटानेके लिये धारा की गयी हो) बढ़ावेगी। इसलियेसमानधारासे अभिषेक करना चाहिये॥१

धारा विधिमें भूलसे हानि और उसके उपाय।

अत्युच्चद्रुत भूरिकालपरिषेकाद्दाहवीसर्परुक्।
मूर्छाङ्ग स्वरसादसन्धिदलनच्छर्द्यस्रपित्तज्वराः॥
कोठाद्याश्च भवन्त्यतः परदिने गण्डूषनस्यादिकं,
कृत्वाशुद्धमहौषधेन सुशृतं तोयंपुनः पाययेत्॥ १९॥
सायान्हे लघु भोजयेत् कटुतरं यूषान्वितं वाप्यथो।
बस्तिं स्नेहकृतं च सैन्धवकृतं कुर्यात्तृतीयेऽहनि॥
स्नेहव्यापदि चोक्तकर्मनिखिलं कुर्याच्चतुर्थेऽन्हातः।
प्राग्वत्स्नेहनिषेवणञ्च विधिवत् कुर्याद्दिने पञ्चमे॥ २०॥

धाराकल्पोक्तविधिसे विरुद्ध "अधिक ऊंचेसे धारा छोड़नेसे, जल्दी करनेसे, अधिक देरी करनेसे" दाह (शरीरमें जलन), विसर्प (जगह जगह फुंसियां होना) मूर्छा, स्वर बिगड़जाना, सन्धियोंमें पीड़ा, वान्ति, रक्तपित्त, ज्वर इत्यादि अनेक उपद्रव हो जाते हैं। इसलिये जिस दिन धाराभिषेक हुआ हो, उसके दूसरे दिन गण्डूषविधि, (औषधियोंसे कुल्ले करना), नस्य (नास लेना), करके सोंठ डालकर औटाये हुए जल को पिलाना चाहिये।

सायङ्कालमें हलका भोजन, काली मिर्च आदि कटु वस्तु मिला हुआ यूष लेना चाहिये; तीसरे दिन सेंधानिमक मिलाकर तेलकी स्निग्ध बस्ति (पिचकारी) लेनी चाहिये। चाहे विधिपूर्वक तेलकी धारा ली गयी हो तो भी चौथे दिन स्नेहव्यापद अध्यायमें कहे हुए कार्य करने चाहिये। इसके बाद पांचवें दिन फिर धारा सेचन और स्नेह सेवन करे।

सेचन विधिमें दूध दूध आदिका परिवर्तनकाल

एकाहादपरं च सेचनविधौ क्षीरादिकं गृह्यते।
धान्याम्लं त्रिदिनात् परं विधिरयं स्नेहस्य तु प्रायशः।
एकेन त्रिदिनं परेण च तथा सिञ्चेत्त्र्यहं तद्वयं।
मिश्रीकृत्य च सप्तमेऽहनि पुनस्त्यक्त्वैनमेवं चरेत्॥ २१॥

जहाँ दूध का अभिषेक करना हो वहां दूध रोज रोज ताजा लेना उचित है, धान्याम्ल एक दिनका बनाया हुआ तीन दिन पर्यन्त बिगड़ता नहीं; अतः चौथे दिन दूसरा बनाना चाहिये। तेल एक ही तीन दिन पर्यन्त काम देता है। पहिले तीन दिन तेलका सेचन करे, फिर तीन दिन धान्याम्लादिसे सेचन करे। पश्चात् सातवें दिन दोनों मिलाकर सेवनकरे।

धारामें तेल भी सप्ताह भरमें बिगड़ जाते हैं; अतएव सप्ताह बीत जाने पर पुनः नवीन तैलादि बना लेना चाहिये ॥ २१ ॥

ताजी बासी चीजोंके सेवनसे गुणदोष ।

यन्नूत्नेन निषेचनं प्रतिदिनं तत्तूत्तमं, मध्यमं ।
तेनैव त्रिदिनं, ततोऽपि च परं मिश्रीकृतं चाधमम् ।

रोज नयी बनी औषधिसे सेचन किया जाय वह उत्तम, एक दिनकी बनी चीजसे तीन दिन सेचन हो तो वह मध्यम, इससे अधिक दिनोंकी बनी औषधि सेचनके काममें लाना अधम है ।

सेचनविधिनिषेध ।

अत्युष्णेऽपि च मन्दकोपसमये मन्दातपे शीतले ।
कुर्यान्न त्वपरान्हकेऽपि च भिषग्रात्रौ तथा सेचनम् ॥२२॥

अत्यन्त उष्णतामें, थोड़से रोगमें, घाम तेज न हो (बादलोंका घिराव हो), बहुत ठण्डमें तथा अपरान्ह कालमें (दिनके तीसरे पहरमें), और रात्रिमें वैद्य सेचन न करावे ॥२२॥

सेचन समाप्तिपर अवश्य कर्म ।

सेकानन्तरमातुरस्तु शिशिराम्बुप्रोक्षणैःष्ठीवनै—
श्चोत्क्षे पैर्मृदुमारुतैरनुगुणं विश्राम्य तत्रोत्थितः ।
मन्दं किञ्चन मर्दितोऽनु च रसैः स्नेहं कषायैस्त्यजेत्—
स्नात्वा कोष्ण जलैः सुगन्धसुभगो धान्यौषधाम्भः पिबेत् २३
पेयं वा लघु सोषणाज्यकटु तक्रं यूषयुक्तं मितं
भक्तं कोष्णमथाचरेद्विधिमतः स्नेहोक्तमत्राखिलम् ।
एवं सप्तदिनं व्यतीत्य पुनरन्येद्यु र्विरेकं ततो
बस्तिं तत्र तु कारयेदिति विधिर्नासत्यसम्भाषितः ॥ २४ ॥



रोगी सेचन विधि समाप्त करके उठे तब ठंडे पानीसे प्रोक्षण करे; खांस खखार डाले, शरीरको झटकार लेवे, तोड़ मरोड़ लेवे (अंगुलियोंका चटकाना कन्धा चटकाना आदि), धारासे उठकर मन्द मन्द थोड़ी हवा खाले; फिर कुछ विश्राम करे, और फिर धारा स्नानसे उत्पन्न शरीरकी चिकनाईको सुगन्धित कषाय द्रव्योंके उबटन और मालिशसे सुखा देवे; फिर कुनकुने जलसे स्नान करे; सुगन्ध द्रव्य सेवन करे; और धनियां सोंठ आदि मिला हलका भोजन दलिया आदि करे तथा औषधियोंके अर्क पीवे। अथवा यूष मिला हुआ मट्ठा त्रिकटु (सोंठमिर्च, पीपल) डालकर पिये। ताज़े गरम भातका मित आहार करे अथवा घी सोंठ, मिर्च पीपल मिला कर लेवे। वह भात भी बिलकुल गरमागरम या बहुत ठंडा न होना चाहिये। इस तरह ७ दिन पथ्यसे रहकर आठवें दिन बस्ति शोधन करना चाहिये। इसमें कुछ भी असत्य भाषण नहीं है।

पथ्य कोष

यावन्त्यौषधयोजितानि दिवसान्येतानि तावन्त्यहा-
न्यन्यान्यप्यथ सर्व कर्मसु बुधो नित्यं जितात्मा नयेत्।

जितने दिन सेचन विधि और औषधि लेवे, उतने ही दिन जितेन्द्रिय और पथ्यसेवी रहे।

सेचनविधिमें कुपथ्य।

स्त्रीणां स्पर्शनदर्शनस्मृतिवशाच्छुक्रे स्रुते सन्ति तत्
सम्पर्केण विनाऽपि तद्भवगदास्तस्मात्त्यजेत्सर्वदा ॥२५॥

व्यायामातपवेगरोधहिमधूमात्युच्चनीचोपधा-
नाहः स्वप्नरजः प्रवात चिरकालासीनताः संस्थितम्।

शोकं जागर पादयान गमन क्रोधाति भाष्यादिकां-
स्त्यक्त्वाऽथोष्ण जलोपचार्यनति भुक्स्याद्ब्रह्मचारी सदा॥२६

स्त्रियोंका दर्शन, स्पर्शन, स्मृति आदि होकर शुक्र स्खलित हो जानेसे शुक्र सम्बन्धी रोग हो सकते हैं। अतएव उस ओरसे बिलकुल चित्त हटाकर अन्यान्य व्यवसायोंमें चित्त लगा देना चाहिये।

कसरत, घाम, वेगावरोध(भूख,प्यास, पायखाना, पेशाब आदिके वेगोंको रोकना) बहुत ठढ, धुआं, बहुत ऊंची अथवा नीची गादीका होना, बिना गादी बिछाये सोना, दिनमें सोना, आंधी, धूल, बड़ी देर तक बैठा ही रहना; शोक, रात्रिमें जागरण, पैदल या बिना जूता खडाऊं पहिने चलना, अतिक्रोध, अति भाषण, इत्यादि वर्जित करे। गरम जलका सेवन करे,ब्रह्मचर्यसे रहे।

रोग विशेषमें सेचन विधि।

गुल्मानाहभगन्दरव्रणतुनीशूलाभिघातास्रवा-
तोदावर्तककोठमूढमरुदष्ठीला बिसर्पादिषु।
प्लीहाध्मानकविद्रधिप्रतितुनीष्वेकाङ्गसेकं तथा
कुर्याद्धस्ततलप्रपूर्ण पिचुना मन्दं सुखोष्णंभिषक् ॥२७॥

गुल्म, आनाह, भगन्दर, व्रण, तूनी, शूल, चोट, रक्तश्राव, वायुका उदावर्त, चर्मरोग, ददोरे आदि पड़ना मूढ़वात रोग, अष्ठीला, विसर्प, प्लीहा, आध्मान, विद्रधि, प्रतितुनी आदि इन रोगोंमें एकाङ्गसेक (सेचन) करना-चाहिये; । और वह भी हाथोंमें रुई लेकर सुखोष्ण औषधिसे धीरे धीरे रँजाना चाहिये।

इति सेचन कल्पः।

मुद्रक—

पं० काशीनाथ वाजपेई

विजय प्रेस प्रयाग ।

